

मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।  
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥  
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुव चरन जी।  
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन-तरन जी॥  
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।  
‘बुध’ जाचहुँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी॥

## दर्शन-स्तुति

(श्री अमरचन्दजी कृत)

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।  
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥  
पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।  
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहीं पहिचान कर॥  
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।  
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहीं पानकर॥१॥  
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।  
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥  
रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।  
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रँगा॥  
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पौ।  
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै॥२॥  
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।  
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥  
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।  
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दस धारन करूँ॥  
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।  
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ॥३॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।  
 कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ॥  
 कर दूर रागादिक निरन्तर आत्म को निर्मल करूँ।  
 बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ ॥  
 आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।  
 आवे 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखद भवसागर तरूँ ॥४॥

### दर्शन-स्तुति

(पं. दौलतरामजी कृत)

(दोहा)

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।  
 सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन ॥१॥

(पद्धारि छन्द)

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।  
 जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार ॥२॥  
 जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।  
 भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि द्वै सुनि विभ्रम नशाय ॥३॥  
 तुम गुण चिंतत निजपर विवेक, प्रकटै, विघटै आपद अनेक।  
 तुम जगभूषण दूषणविमुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥४॥  
 अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।  
 शुभ-अशुभविभाव-अभाव कीन, स्वाभाविकपरिणतिमय अच्छीन ॥५॥  
 अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।  
 मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धिरमा धरंत ॥६॥  
 तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।  
 भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि ॥७॥  
 यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज।  
 जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥८॥